33. तद्नुसार, मामले को एकल न्यायाधीश के पास याचिका (एससीए) का गुणागुणों पर कठोरत: विधि के अनुसरण में, खंड न्यायपीठ और इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किसी मताभिव्यक्तियों के प्रभाव में आए बिना विनिश्चय करने के लिए वापस भेजा जाता है क्योंकि इस न्यायालय ने गुजरात उच्च न्यायालय की राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के विवाद्यक मात्र का विनिश्चय किया है न कि इसके परे ।

34. चूंकि, याचिका (एससीए) बहुत पुराना है, इसलिए, हम एकल न्यायाधीश से यह निवेदन करते हैं कि वे इसका विनिश्चय अधिमानत: छह माह के भीतर करें ।

विशेष सिविल आवेदन (एससीए) मंजूर किया गया ।

क.

[2019] 3 उम. नि. प. 265

महबूब-उर-रहमान (मृत) मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण

बनाम

अहसानूल घनी

[2019 की सिविल अपील सं. 8199]

15 फरवरी, 2019

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे और न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 14 और 16 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 एवं नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 की धारा 27] – पक्षकारों के बीच एक विधिमान्य विक्रय करार होना – पक्षकारों में से एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार पर करार का पालन नहीं करने का आरोप लगाना – विनिर्दिष्ट पालन कराने के लिए वाद फाइल करना – वाद खारिज होना – जहां पक्षकारों के बीच एक विधिमान्य करार किया जाता है वहां संबंधित पक्षकारों को

उसका पालन करना आबद्धकर होता है, किन्तु यदि उनमें से कोई पक्षकार उस करार का पालन नहीं करता है तो दूसरा पक्षकार उस करार का विनिर्दिष्ट पालन तभी करा सकता है जब वह यह साबित कर देता है कि उसने उस करार के अपने भाग का पालन कर दिया है और उसका पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है ।

वर्तमान मामले के तथ्य यह हैं कि तारीख 13 अगस्त, 1979 को वादी-अपीलार्थी ने पूर्वोक्त वाद फाइल किया, यह प्रकथन करते हुए कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने 30,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में प्रश्नगत संपत्ति, गृह सं. 102, फेथफुल गंज, कानपुर नगर का विक्रय करने के लिए उसके पक्ष में तारीख 16/17 अप्रैल, 1975 को एक करार निष्पादित किया था और अग्रिम धन के रूप में 15,000/- रुपए संदत्त किया गया था जबकि शेष रकम, विक्रय विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के समय संदाय किया जाना था । वादी-अपीलार्थी ने यह भी प्रकथन किया है कि करार के पश्चात्, सक्षम प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना संपत्ति का अंतरण प्रतिषिद्ध करते हुए, नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 प्रख्यापित हुआ और प्रतिवादी-प्रत्यर्थी को ऐसी अनुज्ञा प्राप्त करना अपेक्षित था किन्तु वह निवेदनों के बावजूद ऐसा करने में असफल रहा । वादी-अपीलार्थी ने यह भी प्रकथन किया है कि तारीख 6 मई, 1979 को उसने सीलिंग प्राधिकारियों से अनुज्ञा प्राप्त करने और विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादी-प्रत्यर्थी को एक नोटिस भी तामील किया था जिसका प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने करार के बारे में अनभिज्ञता का कथन करते हुए, तारीख 6 जुलाई, 1979 को उत्तर भेजा और समुचित उत्तर के लिए उसकी प्रतिलिपि की ईप्सा की, यह अभिकथन करते हुए कि स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा फाइल वाद के संबंध में कुछ कागजातों पर उसके हस्ताक्षर लेने थे । वादी-अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि ये प्रतिवादी के मिथ्या बहाना थे जो आवश्यक अनुज्ञा लेने के पश्चात् प्रश्नगत गृह का विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आबद्ध था और वह ऐसा करने में असफल रहा, इसलिए, करार का विनिर्दिष्ट पालन कराने के लिए वाद फाइल किया गया था । साक्ष्यों का परिशीलन करने और पक्षकारों के सुनने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने तारीख 10 नवम्बर, 1981 को वाद डिक्री कर दिया, अन्य

बातों के साथ-साथ इस प्रभाव का निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए कि संविदा का सार समय नहीं था, कि प्रतिवादी को नगर सीलिंग प्राधिकारियों से आवश्यक अनुज्ञा प्राप्त करना अपेक्षित था और उसने ऐसा नहीं किया है, वाद समयावधि के भीतर था, कि प्रतिवादी ने तारीख 7 अगस्त, 1979 के पत्र में अपनी बचनबद्धता का पालन करने से इनकार किया जिसे वादी द्वारा तारीख 17 अगस्त, 1979 को प्राप्त किया गया था जबकि वाद पहले ही तारीख 13 अगस्त, 1979 को फाइल हो चुका था और अतएव, वह अच्छी तरह से परिसीमा अवधि के भीतर था, कि अभि. सा. 1 के रूप में अपने परिसाक्ष्य के माध्यम से और तारीख 6 मई, 1979 की नोटिस (प्रदर्श-3) की सहायता से, वादी यह साबित करने में सफल रहा है कि वह करार के अपने भाग का पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है, कि करार न तो कूटरचित था न ही कपट या मिथ्याव्यपदेशन द्वारा प्राप्त किया गया था और कि तारीख 6 अगस्त, 1979 की नोटिस (प्रदर्श ए-12) के अपने उत्तर में, प्रतिवादी ने करार के अस्तित्व के बारे में कोई चुनौती नहीं दी है । विचारण न्यायालय की डिक्री को चुनौती देते हुए, प्रतिवादी ने प्रथम अपील में अन्य बातों के साथ-साथ यह आधार उद्भूत किया कि विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वादी करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था, अनुचित है और आवश्यक प्रकथनों की अपेक्षा करते हुए, वाद खारिज कर दिया जाना चाहिए था । सुसंगत समय पर लागू विधि के अनुसार, उक्त प्रथम अपील उच्च न्यायालय में फाइल की गई थी और वादी, प्रत्यर्थी के रूप में उक्त अपील में हाजिर होते समय वादपत्र में संशोधन की इजाजत की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया जिसके उपरांत उच्च न्यायालय ने तारीख 29 अगस्त, 1982 को यह आदेश पारित किया था कि संशोधन के लिए आवेदन पर अपील की अंतिम सुनवाई के समय विनिश्चित किया जाएगा । उसके बाद अधिकारिता में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए, अपील उच्च न्यायालय द्वारा जिला न्यायालय को संप्रेषित कर दिया गया था और अंततोगत्वा, नवम् अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर को 1982 की अपील सं. 54 के रूप में समनुदेशित किया गया था । तारीख 28 फरवरी, 1995 को प्रथम अपील न्यायालय ने वादपत्र संशोधित करने की इजाजत की ईप्सा करने वाले वादी के आवेदन को नामंजूर कर दिया

और तारीख 25 अप्रैल, 1995 को अपील मंजूर कर लिया, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए स्वयं को तैयार और रजामंद होने की वादपत्र में आवश्यक प्रकथनों को करने में असफल रहा है । वादी-अपीलार्थी द्वारा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत द्वितीय अपील को उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया था ।

उच्च न्यायालय के निर्णय को आक्षेपित करते हुए, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह जोरदार तर्क दिया कि अधिनियम की धारा (ग) के अननुपालन के बारे में लिखित कथन में किसी आक्षेप के अभाव में और उस प्रभाव के किसी विवाद्यक के बिना, प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा तैयार और रजामंद होने के अभिवाक् की तथाकथित अपेक्षा के आधार मात्र पर अपीलार्थी के आवेदन को खारिज करने में न्यायानुमत नहीं थे । विद्वान् कांउसेल ने अधिनियम की धारा 16(ग) के प्रयोजनों के लिए यह निवेदन किया कि संविदा के अपने भाग का पालन करने की वादी के तैयार और रजामंद होने के बारे में प्रश्न की परीक्षा करते समय, न्यायालय को संपूर्ण अभिवचनों और साक्ष्यों के सार को देखना अपेक्षित होता है और न कि सरसरी और संक्षिप्त तौर पर और मामले के सार से ऐसे तैयार और रजामंद होने को अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी तर्क दिया कि संशोधन के लिए आवेदन को नामंजूर करने में कोई न्यायोचितता नहीं थी, यदि तैयार और रजामंद होने के प्रकथन के बारे में किसी प्रकार का कोई प्रश्न उद्भूत हुआ होता, और पक्षकारों के बीच सारवान् न्याय के लिए ऐसे संशोधन को मंजूर किया जाना चाहिए था । इस संबंध में, विद्वान् काउंसेल ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सीपीसी) की धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के संदर्भ में भी यह तर्क दिया कि यद्यपि, मामले में अंतर्वलित विधि के सारवान् प्रश्न को अपील की स्वीकृति के समय विरचित नहीं किया जाता है, फिर भी सारवान् न्याय को सुनिश्चित करने के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे प्रश्न विरचित और विनिश्चित किए जा सकते हैं और वर्तमान मामले में

उच्च न्यायालय ने गलत तौर पर स्वयं को जकड़-जामा में मामले को रखते हुए, स्वीकृति के समय पर ऐसे प्रश्नों को विरचित करने तक सीमित रखा । इसके विपरीत, प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय का सम्यक् रूप से समर्थन करते हुए, यह निवेदन किया कि वादी-अपीलार्थी ने अभिकथित करार के अपने भाग का पालन करने के लिए स्वयं को तैयार और रजामंद होने को सिद्ध करने में असफल रहा, अतएव, वाद सही ही खारिज किया गया है । इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विरोधी निवेदनों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने और लागू विधि के संदर्भ में अभिलेखों की परीक्षा करने के पश्चात्, न्यायालय, उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं कि वर्तमान वाद में प्रश्नगत करार का विनिर्दिष्ट पालन, वादी-अपीलार्थी के पक्ष में संविदा के आवश्यक निबंधनों के अपने भाग का पालन करने के लिए निरंतर तैयार और रजामंद होने को साबित करने की अपेक्षा के बिना प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है । यद्यपि, 2018 की अधिनियम सं. 18 द्वारा विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 का संशोधन करते हुए, अभिव्यक्ति "जो साबित करने में असफल रहता है" के स्थान पर अभिव्यक्ति "जो प्रकथन करने और साबित करने में असफल रहता है" और अभिव्यक्ति 'साबित करना चाहिए' के स्थान पर अभिव्यक्ति 'प्रकथन करना चाहिए' प्रतिस्थापित किया गया किन्तु, उसके बाद सभी तात्विक पहलुओं पर स्थिति उसी प्रकार रही कि संविदा का विनिर्दिष्ट पालन उस व्यक्ति के पक्ष में परिवर्तित नहीं कराया जा सकता है जो यह साबित करने में असफल रहता है कि वह उस संविदा के आवश्यक निबंधनों का पालन पहले ही कर चुका है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है जिसका उसके द्वारा पालन किया जाना है, उन निबंधनों के अलावा जिनका पालन करना अन्य पक्षकार द्वारा निवारित या त्यक्त कर दिया गया है । सुसंगत समय पर लागू विधि के अनुसार, यह वादी के पदधारी का कर्तव्य था कि वह वादपत्र में उस प्रभाव का विनिर्दिष्ट प्रकथन करता । निःसंदेह, इस न्यायालय द्वारा

कतिपय विनिश्चयों में यह स्पष्ट किया गया है कि आवश्यक प्रकथन करने की ऐसी अपेक्षा प्ररूप का मामला नहीं है और ऐसा अभिवाक् करने की कोई विनिर्दिष्ट शैली या भाषा अपेक्षित नहीं है । तथापि, और जब भी संविधि के शब्दों की तकनीकी पुनरुत्पादन पर जोर नहीं दिया जाता है, वादपत्र में उपलब्ध ऐसे अभिवाक् की अपेक्षा न तो त्यक्त होती है न ही धीरे-धीरे कम की जाती है । वादपत्र में आवश्यक प्रकथन की ऐसी अपेक्षा होती है कि वह उस संविदा के आवश्यक निबंधनों का पालन पहले ही कर चुका है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है जिसका वादी होने के नाते उसके द्वारा पालन किया जाना है, लिखित कथन में प्रतिवादी द्वारा मात्र आक्षेप करने से मुश्किल से ही कोई प्रभाव या परिणाम होता है । ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा प्रेषित आवश्यक प्रश्न हमेशा से ही यह रहे हैं कि क्या अभिवचनों और संपूर्ण अभिलेख पर के साक्ष्यों पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि उसने संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया है या ऐसा करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है । जब वर्तमान मामले के अभिवचनों की पूर्वोक्त सिद्धांत के संदर्भ में परीक्षा की जाती है तो यह प्रकट होता है कि वादी ने वादपत्र में प्रश्नगत करार को निर्दिष्ट किया है जिसके द्वारा प्रतिवादी ने अभिकथित तौर पर 30,000/- रुपए के विक्रय प्रतिफल के एवज में उसने प्रश्नगत गृह विक्रय करने का करार किया था और यह प्रकथन किया कि प्रतिवादी ने उससे 15,000/- रुपए की रकम प्राप्त की थी । वादी ने यह कथन किया कि करार, तारीख 16/17 अप्रैल, 1975 को निष्पादित हुआ था । इसके पश्चात्, वादी ने सीधे तौर पर इस तथ्य को निर्दिष्ट किया है कि करार निष्पादन के तत्पश्चात्, नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 उद्घोषित हुआ था और उसकी धारा 27 के अधीन सक्षम प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के बिना संपत्ति के अंतरण को प्रतिषिद्ध कर दिया गया । वादी ने यह भी प्रकथन किया है कि उसने प्रतिवादी को अनुज्ञा लेने और विक्रय विलेख निष्पादित करने का कथन करते हुए, तारीख 6 मई, 1979 को एक नोटिस तामील किया था, कि नोटिस, व्यक्तिगत तौर पर प्रतिवादी पर तारीख 17 मई, 1979 को तामील हुआ था और यह कि प्रतिवादी ने तारीख 6 जुलाई, 1979 के अपने उत्तर में करार के बारे में

अनभिज्ञता का बहाना किया था । वादी ने यह भी प्रकथन किया कि प्रतिवादी आवश्यक अनुज्ञा लेने के पश्चात् गृह का विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आबद्ध था और प्रतिवादी ऐसा करने में असफल रहा, इसलिए, वाद फाइल किया गया । वादपत्र के प्रकथनों में दूर-दूर तक भी ऐसा कोई सुझाव नहीं मिलता है कि वादी, संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है । अभि. सा. 1 के रूप में वादी के परिसाक्ष्य में भी ऐसे सुस्पष्ट प्राख्यान का पता लगाना मुश्किल है कि उसने संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है । अभि. सा. 1 के रूप में, वादी के परिसाक्ष्य में आवश्यक तौर पर अभिकथित करार और पक्षकारों के सभी प्रकार के संव्यवहारों के अस्तित्व और वैधता के बारे में निर्देश है किन्तु, उसकी ओर से तैयार और रजामंद होने के उन तात्विक प्रख्यानों का अभाव है जो विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष मंजूर करने के लिए आवश्यक है । उपर्युक्त परिस्थितियों में, न्यायालय, उच्च न्यायालय के इन निष्कर्षों में कोई गलती पाने में असमर्थ है कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने का प्रकथन करने में और निरंतर तैयार और रजामंद होने को साबित करने में असफल रहा है । मात्र इस एक आधार पर ही वाद असफल होता है । जहां तक वादपत्र के संशोधन के लिए प्रतिपादना का संबंध है, न्यायालय, प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय की ओर से वादी द्वारा किए गए विलंबित प्रार्थना को नामंजूर करने में कोई अवैधता पाने में असमर्थ है । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, संविदा के अपने भाग का पालन करने का प्रकथन करने और तैयार और रजामंद को साबित करने की वादी की ओर से प्रारंभिक अपेक्षा पूरी नहीं हुई है जिसने विनिर्दिष्ट पालन की अनुतोष की ईप्सा की है । यह सिद्धांत कि ऐसे प्रकथन की अपेक्षा, प्ररूप का मामला नहीं है, विलंबित प्रक्रम पर संशोधन के लिए प्रतिपादना में समान रूप से लागू होता है जिसके द्वारा वादी मात्र वादपत्र के प्ररूप में किसी प्रकार का सुधार करने का प्रयास कर सकता है और मात्र अपने तैयार और रजामंद होने की भाषा को समाविष्ट कर सकता है । विनिर्दिष्ट पालन के लिए ऐसे वाद में, न्यायालय मामले के सार पर हमेशा ही विचार करता है और इसे देखता

है यदि वादी अपने आचरण द्वारा यह सिद्ध कर देता है कि वह निर्विवाद तौर पर संविदा के साथ खड़ा है और उसे अनुतोष मंजूर करने के पूर्व उसकी प्रत्येक अपेक्षा का पालन करने को तैयार रहने की भी तत्परता नहीं है जिसके द्वारा संविदा के अन्य भाग का पालन प्रतिवादी से कराया जा सकता है । वर्तमान मामले में, वादी-अपीलार्थी संविदा के अपने भाग का पालन करने का प्रकथन करने में और स्वयं को तैयार और रजामंद होने को साबित करने में असफल रहा है । विचारण न्यायालय ने निश्चय ही यह पूर्णधारणात्मक मत व्यक्त किया है कि उसने ऐसे तैयार और रजामंद होने को साबित कर दिया था । इसके पश्चात्, वादी तभी वादपत्र में संशोधन मंजूर करने की ईप्सा कर सकता है जब उस प्रभाव का आधार प्रतिवादी द्वारा प्रथम अपील में लिया गया हो । न्यायालय के मत में, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वादी मात्र अपीली प्रक्रम पर अपने पक्षकथन में ऐसी कमी को भरने में विलंब भी किया है । दूसरे शब्दों में, अपीली प्रक्रम पर वादपत्र के अभिवचनों में सुधार करने में विलंबित प्रयास वर्तमान मामले में मात्र बेकार का अभ्यास है । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने यह इंगित किया है और ऐसा करना सही भी है कि संशोधन के लिए आवेदन नामंजूर करने वाले आदेश की सत्यता के बारे में कोई विधि का सारवान् प्रश्न विरचित नहीं हुआ था । द्वितीय अपील से संबंधित उपबंधों की स्कीम में यह मूलभूत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 101 के अनुसार, कोई द्वितीय अपील, धारा 100 में उल्लिखित आधारों के सिवाय नहीं की जाएगी । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अनुसार, उच्च न्यायालय में अपील किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपील में पारित डिक्री से तभी हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है, ऐसे प्रश्न का अपील के ज्ञापन में कथन किया जाना अपेक्षित है, उच्च न्यायालय का समाधान होने पर यह प्रश्न विरचित किया जाना अपेक्षित है कि ऐसा मामले में अंतर्वलित है, अपील इस प्रकार विरचित प्रश्न पर सुनी जाती है और सुनवाई के समय पर प्रत्यर्थी यह तर्क दे सकेगा कि मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की उपधारा (5) का परंतुक यह

स्पष्ट करता है कि न्यायालय किसी अन्य सारवान् विधि के प्रश्न पर अपील की सुनवाई कर सकता है, जो उसके द्वारा विरचित नहीं किया गया है, किन्तु उन कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात् कि मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है । न्यायालय का यह स्पष्टत: मत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की उपधारा (5) का परंतुक का आशय धारा 100 की अन्य अपेक्षाओं को अकृत करना नहीं है और इसे मामले के नियम के रूप में अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार विरचित प्रश्न/प्रश्नों पर विचार किए बिना किसी अन्य विधि के सारवान् प्रश्नों के लिए द्वितीय अपील की सुनवाई खुली हुई है यद्यपि, इसे पूर्ववर्ती विरचित नहीं किया गया है । उक्त परंतुक का स्वयं की प्रकृति में ही है कि इसका प्रवर्तन आपवादिक मामलों और मजबूत तथा विश्वसनीय कारणों में ही किया जा सकता है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट अभिलिखित किया जाए । किसी अन्य विधि के प्रश्न पर द्वितीय अपील में विरचित और सुनवाई करने के लिए वर्तमान मामले में, कोई ऐसा मजबूत और विश्वसनीय कारण नहीं होने के नाते उच्च न्यायालय की इस संबंध में वादी-अपीलार्थी की ओर से की गई दलीलों को नामंजूर करने में कोई गलती नहीं हो सकती है । (पैरा 12, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 4 एस. सी. सी. 562 : **सूरत सिंह (मृत)** बनाम **श्री भगवान और अन्य** ;	20
[2017]	(2017) 4 एस. सी. सी. 654 : **ए. कंठमणि** बनाम **नसरीन अहमद** ;	14
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 243 : **उमा बाई और एक अन्य** बनाम **नीलकंठ धोनदिवा चावन (मृत) मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की सिविल अपील सं. 8199.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सईद मेहदी इमाम, (सुश्री) शमामा ए., आरिफ सुहरावर्दी, तबरेज अहमद, अधिवक्तागण

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एम. एम. कश्यप

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी ने दिया ।

न्या. महेश्वरी – इसमें के अपीलार्थी (अब मृत और उसके विधिक प्रतिनिधिगणों द्वारा प्रतिनिधित्व) ने विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन कराने के लिए एक वाद, 1979 की मूल वाद सं. 392 फाइल की थी, जिसे द्वितीय अपर सिविल न्यायाधीश, कानपुर नगर ने तारीख 10 दिसम्बर, 1981 के निर्णय और डिक्री द्वारा डिक्री कर दिया था । तथापि, विचारण न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित डिक्री को नवम् अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर ने 1982 की अपील सं. 54 में तारीख 3 जुलाई, 1995 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा उलट दिया था, मुख्यत:, इस आधार पर कि वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए निरंतर तैयार और रजामंदी को साबित करने में असफल रहा है । उच्च न्यायालय, इलाहाबाद ने 1995 की नियमित द्वितीय अपील सं. 931 में तारीख 10 दिसम्बर 2007 के अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा वादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल द्वितीय अपील को खारिज करते हुए प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की पुष्टि कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर, वादी-अपीलार्थी ने यह अपील प्रस्तुत की है ।

2. संक्षिप्तत:, मामले के सुसंगत पृष्ठभूमि के पहलू यह हैं कि तारीख 13 अगस्त, 1979 को वादी-अपीलार्थी ने पूर्वोक्त वाद फाइल किया, यह प्रकथन करते हुए कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने 30,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में प्रश्नगत संपत्ति, गृह सं. 102, फेथफुल गंज, कानपुर नगर का विक्रय करने के लिए उसके पक्ष में तारीख 16/17 अप्रैल, 1975 को एक करार निष्पादित किया था और अग्रिम धन के रूप में 15,000/- रुपए संदत्त किया गया था जबकि शेष रकम, विक्रय

विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के समय संदाय किया जाना था । वादी-अपीलार्थी ने यह भी प्रकथन किया है कि करार के पश्चात्, सक्षम प्राधिकारी की अनुज्ञा के बिना संपत्ति का अंतरण प्रतिषिद्ध करते हुए, नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 प्रख्यापित हुआ और प्रतिवादी-प्रत्यर्थी को ऐसी अनुज्ञा प्राप्त करना अपेक्षित था किन्तु वह निवेदनों के बावजूद ऐसा करने में असफल रहा । वादी-अपीलार्थी ने यह भी प्रकथन किया है कि तारीख 6 मई, 1979 को उसने सिलिंग प्राधिकारियों से अनुज्ञा प्राप्त करने और विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए प्रतिवादी-प्रत्यर्थी को एक नोटिस भी तामील किया था जिसका प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने करार के बारे में अनभिज्ञता का कथन करते हुए, तारीख 6 जुलाई, 1979 को उत्तर भेजा और समुचित उत्तर के लिए उसकी प्रतिलिपि की ईप्सा की, यह अभिकथन करते हुए कि स्टेट बैंक ऑफ इंडिया द्वारा फाइल वाद के संबंध में कुछ कागजातों पर उसके हस्ताक्षर लेने थे । वादी-अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि ये प्रतिवादी के मिथ्या बहाने थे जो आवश्यक अनुज्ञा लेने के पश्चात् प्रश्नगत गृह का विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आबद्ध था और वह ऐसा करने में असफल रहा, इसलिए, करार का विनिर्दिष्ट पालन कराने के लिए वाद फाइल किया गया था ।

3. प्रतिवादी-प्रत्यर्थी ने वादपत्र के प्रकथनों को इनकार करते हुए, अन्य बातों के साथ यह अभिकथित किया कि वह स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से फर्म मैसर्स एडम टेक्टाइल द्वारा लिए गए ऋण के संबंध में एक प्रत्याभूति-दाता के रूप में अंतर्वलित था और उसका प्रश्नगत गृह उक्त बैंक के पास बंधक में रखा गया था और जब बैंक ने उसके विरुद्ध कार्रवाई करने की धमकी दी तो वाद, जो उसे जानता था, ने उसकी ओर से मामले में विरोध सुनिश्चित किया और किराया आधार पर प्रश्नगत गृह का कब्जा सौंपने के लिए उससे निवेदन किया । प्रतिवादी ने यह अभिकथन किया कि उसे वादी के अनुनय करने पर धोखा हुआ और बैंक द्वारा फाइल वाद का विचारण करने के प्रयोजन के लिए बैंक कागजातों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए गए थे, जिसमें से कुछ दस्तावेज जाली था और यह कि अभिकथित करार की प्रतिलिपि, उसके मांग करने के बावजूद उसे कभी भी नहीं दी गई । प्रतिवादी ने भी परिसीमा अवधि, मूल्यांकन और न्यायालय शूल्क के संबंध में आक्षेप किए हैं ।

4. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने मामले में अंतर्वलित प्रश्नों का अवधारण करने के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किया :–

"1. क्या वाद, मूल्यांकन के अधीन है और संदत्त न्यायालय शूल्क अपर्याप्त है ?

2. क्या वाद परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है ?

3. क्या करार कूटरचित है, जैसा कि अभिकथित है ?

4. क्या करार, कपट, मिथ्या-व्यपदेशन द्वारा प्रभावित है, जैसा कि लिखित कथन के पैरा 12 से 15 में अभिकथित है ?

5. क्या अनुतोष, यदि कोई हो, दिया जाना चाहिए, जिसका वादी हकदार है ?"

5. साक्ष्यों का परिशीलन करने और पक्षकारों के सुनने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने तारीख 10 नवम्बर, 1981 को वाद डिक्री कर दिया, अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रभाव का निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए कि संविदा का सार समय नहीं था, कि प्रतिवादी को नगर सीलिंग प्राधिकारियों से आवश्यक अनुज्ञा प्राप्त करना अपेक्षित था और उसने ऐसा नहीं किया है, वाद समयावधि के भीतर था, कि प्रतिवादी ने तारीख 7 अगस्त, 1979 के पत्र में अपनी वचनबद्धता का पालन करने से इनकार किया जिसे वादी द्वारा तारीख 17 अगस्त, 1979 को प्राप्त किया गया था जबकि वाद पहले ही तारीख 13 अगस्त, 1979 को फाइल हो चुका था और अतएव, वह अच्छी तरह से परिसीमा अवधि के भीतर था, कि अभि. सा. 1 के रूप में अपने परिसाक्ष्य के माध्यम से और तारीख 6 मई, 1979 की नोटिस (प्रदर्श-3) की सहायता से, वादी यह साबित करने में सफल रहा है कि वह करार के अपने भाग का पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है, कि करार न तो कूटरचित था न ही कपट या मिथ्याव्यपदेशन द्वारा प्राप्त किया गया था और तारीख 6 अगस्त, 1979 की नोटिस (प्रदर्श ए-12) के अपने उत्तर में, प्रतिवादी ने करार के अस्तित्व के बारे में कोई चुनौती नहीं दी है ।

6. विचारण न्यायालय की डिक्री को चुनौती देते हुए, प्रतिवादी ने

प्रथम अपील में अन्य बातों के साथ-साथ यह आधार उद्धृत किया कि विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वादी करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था, अनुचित है और आवश्यक प्रकथनों की अपेक्षा करते हुए, वाद खारिज कर दिया जाना चाहिए था ।

7. सुसंगत समय पर लागू विधि के अनुसार, उक्त प्रथम अपील उच्च न्यायालय में फाइल की गई थी और वादी, प्रत्यर्थी के रूप में उक्त अपील में हाजिर होते समय वादपत्र में संशोधन की इजाजत की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया जिसके उपरांत उच्च न्यायालय ने तारीख 29 अगस्त, 1982 को यह आदेश पारित किया था कि संशोधन के लिए आवेदन पर अपील की अंतिम सुनवाई के समय विनिश्चित किया जाएगा । उसके बाद अधिकारिता में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए, अपील उच्च न्यायालय द्वारा जिला न्यायालय को संप्रेषित कर दिया गया था और अंततोगत्वा, नवम् अपर जिला न्यायाधीश, कानपुर नगर को 1982 की अपील सं. 54 के रूप में समनुदेशित किया गया था । तारीख 28 फरवरी, 1995 को प्रथम अपील न्यायालय ने वादपत्र संशोधित करने की इजाजत की ईप्सा करने वाले वादी के आवेदन को नामंजूर कर दिया और तारीख 25 अप्रैल, 1995 को अपील मंजूर कर लिया, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए स्वयं को तैयार और रजामंद होने के लिए वादपत्र में आवश्यक प्रकथनों को करने में असफल रहा है ।

8. वादी-अपीलार्थी द्वारा प्रथम अपील न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत द्वितीय अपील को उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया था :–

> "(i) क्या निचला अपील न्यायालय उक्त मुद्दे पर किसी अभिवचन और/या विवाद्यक के बिना विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 14 और 16 के उपबंधों के अननुपालन के लिए वाद खारिज करने में न्यायानुमत था ?
>
> (ii) क्या निचले अपील न्यायालय को विवाद्यक विरचित करने चाहिए, यदि सुसंगत थे और क्या विचारण न्यायालय के पास

इसे वापस भेजना चाहिए था ?"

9. उच्च न्यायालय ने तारीख 10 दिसम्बर, 2007 के अपने आक्षेपित निर्णय में, पक्षकारों की दलीलों का विस्तारपूर्वक और मामले में लागू विधि की परीक्षा की, विशिष्टतया विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम भी कहा गया है) की धारा 16 के संदर्भ में और इस न्यायालय के कतिपय विनिश्चयों जिनमें **उमा बाई और एक अन्य** बनाम **नीलकंठ धोनदिवा चावन (मृत) मार्फत इसके विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय सम्मिलित है, की भी परीक्षा की और वादी-अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों को नामंजूर करते हुए, निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "वादपत्र में किए गए प्रकथनों से और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि वादी की ओर से निरंतर तैयार और रजामंद होने का पूर्णत: अभाव है । उसके आचरण में ऐसा कुछ नहीं है जिसे दूरस्थ तौर पर भी यह दर्शित हो सके कि तारीख 6 मई, 1979 की नोटिस की पूर्व वादी ने संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए किसी प्रकार से तैयार और रजामंद होना अभिव्यक्त किया हो ।
>
> अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि प्रतिवादी ने भी ऐसा अभिवाक् उद्भूत नहीं किया है, वादी-अपीलार्थी की कोई सहायता नहीं करता है क्योंकि अधिनियम की धारा 16(ग) के अधीन वादी को इस तथ्य के बारे में निश्चयपूर्वक कहना चाहिए और इसे साबित करना चाहिए । ऐसा ही मत, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **उमा बाई** (उपर्युक्त) वाले मामले में व्यक्त किया गया था । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 5 का विनिश्चय करते समय मात्र यह मत व्यक्त किया था कि अधिनियम के कतिपय धाराएं जिनमें अधिनियम की धारा 16(ग) सम्मिलित है, लागू नहीं होती है, क्योंकि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद रहा है । यह निष्कर्ष बिना किसी

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 243.

चर्चा के निकाला गया है । दूसरी ओर, निचले अपील ने इस विवाद्यक पर विस्तारपूर्वक विचार किया है । यह मत व्यक्त किया है कि तारीख 16/17 अप्रैल, 1975 के अभिकथित करार के अधीन करार के एक माह के भीतर अनुज्ञा लेना अपेक्षित था और उसके बाद विक्रय विलेख निष्पादित किया जाना अपेक्षित था किन्तु वादी न केवल तैयार और रजामंद होने के बारे में वादपत्र में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन करने में असफल रहा अपितु वह उसे साबित करने में भी असफल रहा । उपर्युक्त की गई चर्चा के प्रकाश में, निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष सही है ।"

10. वादी-अपीलार्थी की यह दलील कि प्रथम अपील न्यायालय, संशोधन के लिए आवेदन को नामंजूर करने में न्यायानुमत नहीं था, को भी उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मत व्यक्त करते हुए, नकार दिया था :–

"निचले अपील न्यायालय ने विस्तृत आदेश द्वारा तैयार और रजामंद होने के बारे में एक अनुतोष जोड़ते हुए, वादपत्र में संशोधन करने के लिए विलंबित प्रक्रम पर फाइल आवेदन को नामंजूर कर दिया था । द्वितीय अपील की स्वीकृति के समय पर न्यायालय ऐसे किसी सारवान् विधि के प्रश्न को विरचित नहीं कर सकता है कि क्या संशोधन आवेदन अवैध तौर पर नामंजूर कर दिया गया था । इसलिए, इस अभिवाक् पर द्वितीय अपील की सुनवाई के समय विचार नहीं किया जा सकता था । तथापि, अन्यथा भी संशोधन आवेदन नामंजूर करने के आदेश में कोई कमी नहीं है क्योंकि इसे विचारणीय विलंब में फाइल नहीं किया गया था और इसमें पुन: विचारण अंतर्वलित होता क्योंकि इस विवाद्यक पर पक्षकारों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते ।"

11. उच्च न्यायालय के निर्णय को आक्षेपित करते हुए, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह जोरदार तर्क दिया कि अधिनियम की धारा (ग) के अननुपालन के बारे में लिखित कथन में किसी आक्षेप के अभाव में और उस प्रभाव के किसी विवाद्यक के बिना, प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा तैयार और रजामंद होने के अभिवाक् की

तथाकथित अपेक्षा के आधार मात्र पर अपीलार्थी के आवेदन को खारिज करने में न्यायानुमत नहीं थे । विद्वान् काउंसेल ने अधिनियम की धारा 16(ग) के प्रयोजनों के लिए यह निवेदन किया कि संविदा के अपने भाग का पालन करने की वादी के तैयार और रजामंद होने के बारे में प्रश्न की परीक्षा करते समय, न्यायालय को संपूर्ण अभिवचनों और साक्ष्यों के सार को देखना अपेक्षित होता है और न कि सरसरी और संक्षिप्त तौर पर और मामले के सार से ऐसे तैयार और रजामंद होने को अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी तर्क दिया कि संशोधन के लिए आवेदन को नामंजूर करने में कोई न्यायोचितता नहीं थी, यदि तैयार और रजामंद होने के प्रकथन के बारे में किसी प्रकार का कोई प्रश्न उद्भूत हुआ होता, और पक्षकारों के बीच सारवान् न्याय के लिए ऐसे संशोधन को मंजूर किया जाना चाहिए था । इस संबंध में, विद्वान् काउंसेल ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सीपीसी) की धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के संदर्भ में भी यह तर्क दिया कि यद्यपि, मामले में अंतर्वलित विधि के सारवान् प्रश्न को अपील की स्वीकृति के समय विरचित नहीं किया जाता है, फिर भी सारवान् न्याय को सुनिश्चित करने के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे प्रश्न विरचित और विनिश्चित किए जा सकते हैं और वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने गलत तौर पर स्वयं को जकड़-जामा में मामले को रखते हुए, स्वीकृति के समय पर ऐसे प्रश्नों को विरचित करने तक सीमित रखा । इसके विपरीत, प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय का सम्यक् रूप से समर्थन करते हुए, यह निवेदन किया कि वादी-अपीलार्थी ने अभिकथित करार के अपने भाग का पालन करने के लिए स्वयं को तैयार और रजामंद होने को सिद्ध करने में असफल रहा, अतएव, वाद सही ही खारिज किया गया है ।

12. विरोधी निवेदनों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने और लागू विधि के संदर्भ में अभिलेखों की परीक्षा करने के पश्चात्, हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं कि वर्तमान वाद में प्रश्नगत करार का विनिर्दिष्ट पालन, वादी-अपीलार्थी के पक्ष में संविदा के आवश्यक निबंधनों के अपने भाग का पालन करने के लिए निरंतर तैयार और रजामंद होने को साबित करने की अपेक्षा के बिना प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता है ।

13. यह अतिशेष रह जाता है कि विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष सामान्य विधि का उपचार नहीं है अपितु यह आवश्यक तौर पर साम्या का प्रयोग है । इसलिए, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 संविदा के विनिर्दिष्ट पालन करने के लिए विभिन्न कारकों और मानदंडों का उपबंध करते हुए, उन संविदाओं के बारे में उपबंध करता है जो विनिर्दिष्ट तौर पर प्रवर्तनीय नहीं है, जिस व्यक्ति या जिसके विरुद्ध संविदा विनिर्दिष्ट तौर पर प्रवर्तित कराया जा सकता है । अधिनियम के इस स्कीम में, उसकी धारा 16 विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष देने से वैयक्तिक वर्जन के लिए उपबंध करता है । धारा 16 का खंड (ग) अपने स्पष्टीकरण के साथ प्रश्नगत वाद में जिस प्रकार लागू होता है, निम्नलिखित है –

"16. अनुतोष का वैयक्तिक वर्जन – संविदा का विनिर्दिष्ट पालन किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नहीं कराया जा सकता –

(क) * * * *

(ख) * * * *

(ग) जो यह प्रकथन करने और साबित करने में असफल रहे कि उसके संविदा के उन निबंधनों से भिन्न जिनका पालन प्रतिवादी द्वारा निवारित अथवा अधित्यक्त किया गया है, ऐसे मर्मभूत निबंधनों का जो उसके द्वारा पालन किए जाने हैं, उसने पालन कर दिया है अथवा पालन करने के लिए वह सदा तैयार और रजामंद रहा है ।

स्पष्टीकरण – खंड (ग) के प्रयोजनों के लिए –

(i) जहां कि संविदा में धन का संदाय अंतर्वलित हो, वादी के लिए आवश्यक नहीं है कि वह प्रतिवादी को किसी धन का वास्तव में निविदान करे या न्यायालय में निक्षेप करे सिवाय जबकि न्यायालय ने ऐसा करने का निदेश दिया हो ;

(ii) वादी को यह प्रकथन करना होगा कि वह संविदा का उसके शुद्ध अर्थान्वयन के अनुसार पालन कर चुका, अथवा पालन करने को तैयार और रजामंद है ।"

14. यद्यपि, 2018 की अधिनियम सं. 18 द्वारा विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 का संशोधन करते हुए, अभिव्यक्ति "जो साबित करने में असफल रहता है" के स्थान पर अभिव्यक्ति "जो प्रकथन करने और साबित करने में असफल रहता है" और अभिव्यक्ति 'साबित करना चाहिए' के स्थान पर अभिव्यक्ति 'प्रकथन करना चाहिए' प्रतिस्थापित किया गया किन्तु, उसके बाद सभी तात्विक पहलुओं पर स्थिति उसी प्रकार रही कि संविदा का विनिर्दिष्ट पालन उस व्यक्ति के पक्ष में परिवर्तित नहीं कराया जा सकता है जो यह साबित करने में असफल रहता है कि वह उस संविदा के आवश्यक निबंधनों का पालन पहले ही कर चुका है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है जिसका उसके द्वारा पालन किया जाना है, उन निबंधनों के अलावा जिनका पालन करना अन्य पक्षकार द्वारा निवारित या त्यक्त कर दिया गया है । सुसंगत समय पर लागू विधि के अनुसार, यह वादी के पदधारी का कर्तव्य था कि वह वादपत्र में उस प्रभाव का विनिर्दिष्ट प्रकथन करता । निःसंदेह, इस न्यायालय द्वारा कतिपय विनिश्चयों में यह स्पष्ट किया गया है कि आवश्यक प्रकथन करने की ऐसी अपेक्षा प्ररूप का मामला नहीं है और ऐसा अभिवाक् करने की कोई विनिर्दिष्ट शैली या भाषा अपेक्षित नहीं है । तथापि, और जब भी संविधि के शब्दों की तकनीकी पुनरुत्पादन पर जोर नहीं दिया जाता है, वादपत्र में उपलब्ध ऐसे अभिवाक् की अपेक्षा न तो त्यक्त होती है न ही धीरे-धीरे कम की जाती है । **ए. कंठमणि** बनाम **नसरीन अहमद**[1] वाले मामले में, तथ्यों के आधार पर करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री को अनुमोदित करते समय भी इस न्यायालय ने यह इंगित किया कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) में अंतर्विष्ट के सदृश्य अपेक्षा, उस प्रभाव के विनिर्दिष्ट उपबंध के बिना भी इसके पूर्वगामी अधिनियम अर्थात् विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 के साथ पढ़ा जाना चाहिए । अधिनियम के स्कीम की परीक्षा और सिविल प्रक्रिया संहिता की अपेक्षाओं की परीक्षा करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

---

[1] (2017) 4 एस. सी. सी. 654.

"22. इसलिए, वादपत्र जिसमें करार/संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष की ईप्सा की गई है, में धारा 16(ग) की सभी अपेक्षाओं के साथ ही सिविल प्रक्रिया संहिता के परिशिष्ट 'ए' के प्ररूप 47 और 48 में अंतर्विष्ट सभी अपेक्षाएं अंतर्विष्ट होने चाहिए ।"

15. वादपत्र में आवश्यक प्रकथन की ऐसी अपेक्षा होती है कि वह उस संविदा के आवश्यक निबंधनों का पालन पहले ही कर चुका है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है जिसका वादी होने के नाते उसके द्वारा पालन किया जाना है, लिखित कथन में प्रतिवादी द्वारा मात्र आक्षेप करने से मुश्किल से ही कोई प्रभाव या परिणाम होता है । ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा प्रेषित आवश्यक प्रश्न हमेशा से ही यह रहे हैं कि क्या अभिवचनों और संपूर्ण अभिलेख पर के साक्ष्यों पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि उसने संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया है या ऐसा करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है । इस संबंध में, इस न्यायालय द्वारा **उमा बाई** (उपर्युक्त) वाले मामले में, उल्लिखित निम्नलिखित सिद्धांतों के प्रति निर्देश करना पर्याप्त होगा :–

"30. अब यह सुस्थिर है कि पक्षकारों के आचरण, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या वादी-प्रत्यर्थी निरंतर और अब भी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद हैं जैसा कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 16(ग) के अधीन आज्ञापक तौर पर अपेक्षित है, का अवधारण संपूर्ण परिस्थितियों पर विचार करते हुए किया जाना चाहिए । वादपत्र में मूल प्रकथन या मुख्य परीक्षा में किए गए कथन पर्याप्त नहीं होंगे । वादी-प्रत्यर्थी के आचरण का न्यायनिर्णयन संपूर्ण अभिवचनों के साथ ही अभिलेख पर लाए गए संपूर्ण साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् होना चाहिए ।

* * * *

45. यह वादी के लिए होता है कि वह अनुध्यात रकम को संदाय करने के अपने तैयार और रजामंद होने को साबित करे

और यह अपीलार्थियों के लिए नहीं होता है कि वह ऐसे प्रश्न को उद्भूत करे ...।"

16. जब वर्तमान मामले के अभिवचनों की पूर्वोक्त सिद्धांत के संदर्भ में परीक्षा की जाती है तो यह प्रकट होता है कि वादी ने वादपत्र में प्रश्नगत करार को निर्दिष्ट किया है जिसके द्वारा प्रतिवादी ने अभिकथित तौर पर 30,000/- रुपए के विक्रय प्रतिफल के एवज में उसने प्रश्नगत गृह विक्रय करने का करार किया था और यह प्रकथन किया कि प्रतिवादी ने उससे 15,000/- रुपए की रकम प्राप्त की थी । वादी ने यह कथन किया कि करार, तारीख 16/17 अप्रैल, 1975 को निष्पादित हुआ था । इसके पश्चात्, वादी ने सीधे तौर पर इस तथ्य को निर्दिष्ट किया है कि करार निष्पादन के तत्पश्चात्, नगर भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 उद्घोषित हुआ था और उसकी धारा 27 के अधीन सक्षम प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के बिना संपत्ति के अंतरण को प्रतिषिद्ध कर दिया गया । वादी ने यह भी प्रकथन किया है कि उसने प्रतिवादी को अनुज्ञा लेने और विक्रय विलेख निष्पादित करने का कथन करते हुए, तारीख 6 मई, 1979 को एक नोटिस तामील किया था, कि नोटिस, व्यक्तिगत तौर पर प्रतिवादी पर तारीख 17 मई, 1979 को तामील हुआ था और यह कि प्रतिवादी ने तारीख 6 जुलाई, 1979 के अपने उत्तर में करार के बारे में अनभिज्ञता का बहाना किया था । वादी ने यह भी प्रकथन किया कि प्रतिवादी आवश्यक अनुज्ञा लेने के पश्चात् गृह का विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आबद्ध था और प्रतिवादी ऐसा करने में असफल रहा, इसलिए, वाद फाइल किया गया । वादपत्र के प्रकथनों में दूर-दूर तक भी ऐसा कोई सुझाव नहीं मिलता है कि वादी, संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है । अभि. सा. 1 के रूप में वादी के परिसाक्ष्य में भी ऐसे सुस्पष्ट प्राख्यान का पता लगाना मुश्किल है कि उसने संविदा के अपने भाग का पालन कर दिया है या पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है । अभि. सा. 1 के रूप में, वादी के परिसाक्ष्य में आवश्यक तौर पर अभिकथित करार और पक्षकारों के सभी प्रकार के संव्यवहारों के अस्तित्व और वैधता के बारे में निर्देश है किन्तु, उसकी ओर से तैयार और रजामंद होने के उन तात्विक

प्रख्यानों का अभाव है जो विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष मंजूर करने के लिए आवश्यक है ।

17. उपर्युक्त परिस्थितियों में, हम उच्च न्यायालय के इन निष्कर्षों में कोई गलती पाने में असमर्थ हैं कि वादी संविदा के अपने भाग का पालन करने का प्रकथन करने में और निरंतर तैयार और रजामंद होने को साबित करने में असफल रहा है । मात्र इस एक आधार पर ही वाद असफल होता है ।

18. जहां तक वादपत्र के संशोधन के लिए प्रतिपादना का संबंध है, हम, प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय की ओर से वादी द्वारा किए गए विलंबित प्रार्थना को नामंजूर करने में कोई अवैधता पाने में असमर्थ है । जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, वादी की ओर से संविदा के अपने भाग का पालन करने का प्रकथन करने तथा तैयार और रजामंद होने को साबित करने की प्रारंभिक अपेक्षा पूरी नहीं हुई है जिसने विनिर्दिष्ट पालन की अनुतोष की ईप्सा की है । यह सिद्धांत कि ऐसे प्रकथन की अपेक्षा, प्ररूप का मामला नहीं है, विलंबित प्रक्रम पर संशोधन के लिए प्रतिपादना में समान रूप से लागू होता है जिसके द्वारा वादी मात्र वादपत्र के प्ररूप में किसी प्रकार का सुधार करने का प्रयास कर सकता है और मात्र अपने तैयार और रजामंद होने की भाषा को समाविष्ट कर सकता है । विनिर्दिष्ट पालन के लिए ऐसे वाद में, न्यायालय मामले के सार पर हमेशा ही विचार करता है और इसे देखता है यदि वादी अपने आचरण द्वारा यह सिद्ध कर देता है कि वह निर्विवाद तौर पर संविदा के साथ खड़ा है और उसे अनुतोष मंजूर करने के पूर्व उसकी प्रत्येक अपेक्षा का पालन करने को तैयार रहने की भी तत्परता नहीं है जिसके द्वारा संविदा के अन्य भाग का पालन प्रतिवादी से कराया जा सकता है । वर्तमान मामले में, वादी-अपीलार्थी संविदा के अपने भाग का पालन करने का प्रकथन करने में और स्वयं को तैयार और रजामंद होने को साबित करने में असफल रहा है । विचारण न्यायालय ने निश्चय ही यह पूर्णधारणात्मक मत व्यक्त किया है कि उसने ऐसे तैयार और रजामंद होने को साबित कर दिया था । इसके पश्चात्, वादी तभी वादपत्र में संशोधन मंजूर करने की ईप्सा कर सकता

है जब उस प्रभाव का आधार प्रतिवादी द्वारा प्रथम अपील में लिया गया हो । हमारे मत में, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वादी मात्र अपीली प्रक्रम पर अपने पक्षकथन में ऐसी कमी को भरने में विलंब भी किया है । दूसरे शब्दों में, अपीली प्रक्रम पर वादपत्र के अभिवचनों में सुधार करने में विलंबित प्रयास वर्तमान मामले में मात्र बेकार का अभ्यास है ।

19. इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने यह इंगित किया है और ऐसा करना सही भी है कि संशोधन के लिए आवेदन नामंजूर करने वाले आदेश की सत्यता के बारे में कोई विधि का सारवान् प्रश्न विरचित नहीं हुआ था । द्वितीय अपील से संबंधित उपबंधों की स्कीम में यह मूलभूत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 101 के अनुसार, कोई द्वितीय अपील, धारा 100 में उल्लिखित आधारों के सिवाय नहीं की जाएगी । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 और 101 निम्नलिखित है :-

> "100. द्वितीय अपील - (1) उसके सिवाय जैसा इस संहिता के पाठ में था तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है, उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय द्वारा अपील में पारित प्रत्येक डिक्री की उच्च न्यायालय में अपील हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है ।
>
> (2) एकपक्षीय पारित अपीली डिक्री की अपील इस धारा के अधीन हो सकेगी ।
>
> (3) इस धारा के अधीन अपील में अंतर्वलित विधि के उस सारवान् प्रश्न का अपील के ज्ञापन में प्रमिततः कथन किया जाएगा ।
>
> (4) जहां उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि किसी मामले में सारवान् विधि का प्रश्न अंतर्वलित है तो वह उस प्रश्न को बनाएगा ।
>
> (5) अपील इस प्रकार बनाए गए प्रश्न पर सुनी जाएगी और

प्रतिवादी को अपील की सुनवाई में यह तर्क करने की अनुज्ञा दी जाएगी कि ऐसे मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित नहीं है :

परंतु, इस धारा की किसी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह, विधि के किसी अन्य ऐसे सारवान् प्रश्न पर जो न्यायालय के द्वारा नहीं बनाया गया है, न्यायालय का यह समाधान हो जाने पर कि उस मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है, न्यायालय की कारणों को लेखबद्ध करके अपील सुनने को शक्ति वापस लेती है या उसे न्यून करती है ।

101. **द्वितीय अपील का किसी भी अन्य आधार न होना** – कोई भी द्वितीय अपील धारा 100 में वर्णित आधारों पर होगी, अन्यथा नहीं ।"

20. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अनुसार, उच्च न्यायालय में अपील किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपील में पारित डिक्री से तभी हो सकेगी, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि उस मामले में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अंतर्वलित है, ऐसे प्रश्न का अपील के ज्ञापन में कथन किया जाना अपेक्षित है, उच्च न्यायालय का समाधान होने पर यह प्रश्न विरचित किया जाना अपेक्षित है कि ऐसा मामले में अंतर्वलित है, अपील इस प्रकार विरचित प्रश्न पर सुनी जाती है और सुनवाई के समय पर प्रत्यर्थी यह तर्क दे सकेगा कि मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की उपधारा (5) का परंतुक यह स्पष्ट करता है कि न्यायालय किसी अन्य सारवान् विधि के प्रश्न पर अपील की सुनवाई कर सकता है, जो उसके द्वारा विरचित नहीं किया गया है, किन्तु उन कारणों को अभिलिखित करने के पश्चात् कि मामले में ऐसा प्रश्न अंतर्वलित है । **सूरत सिंह (मृत)** बनाम **श्री भगवान और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की उपधारा (5) के परंतुक के अधीन उच्च न्यायालय की शक्तियों को इंगित किया है जो निम्नलिखित है :-

"21. ..... तथापि, उपधारा (5) का परंतुक भी उच्च

---

[1] (2018) 4 एस. सी. सी. 562.

न्यायालय को किसी अन्य विधि के सारवान् प्रश्न पर अपील सुनने की शक्ति देता है, जिसे उपधारा (4) के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा आरंभत: विरचित नहीं किया गया है । तथापि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी शक्ति का प्रयोग, अपील की सुनवाई के समय पर ऐसे विधि के अतिरिक्त प्रश्न विरचित करने के लिए कारणों को समनुदेशित करने के पश्चात् ही किया जा सकता है ।"

21. हमारा यह स्पष्टत: मत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 की उपधारा (5) का परंतुक का आशय धारा 100 की अन्य अपेक्षाओं को अकृत करना नहीं है और इसे मामले के नियम के रूप में अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार विरचित प्रश्न/प्रश्नों पर विचार किए बिना किसी अन्य विधि के सारवान् प्रश्नों के लिए द्वितीय अपील की सुनवाई खुली हुई है यद्यपि, इसे पूर्ववर्ती विरचित नहीं किया गया है । उक्त परंतुक का स्वयं की प्रकृति में ही है कि इसका प्रवर्तन आपवादिक मामलों और मजबूत तथा विश्वसनीय कारणों में ही किया जा सकता है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट अभिलिखित किया जाए । किसी अन्य विधि के प्रश्न पर द्वितीय अपील में विरचित और सुनवाई करने के लिए वर्तमान मामले में, कोई ऐसा मजबूत और विश्वसनीय कारण नहीं होने के नाते उच्च न्यायालय की इस संबंध में वादी-अपीलार्थी की ओर से की गई दलीलों को नामंजूर करने में कोई गलती नहीं हो सकती है ।

22. इसमें उपर्युक्त की गई चर्चा के आधार पर, हमारा यह समाधान है कि प्रश्नगत करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष को प्रथम अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा सही ही नामंजूर किया गया है । मामले में, हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं बनता है, अतएव, अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

क.